भगवान श्री कृष्ण
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद

Dharm prakash Arya 16/33

भगवान श्री कृष्ण

लेखक

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

सम्पादक

कर्मयोगी : लाजपत राय अग्रवाल

प्रकाशक

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाज़ियाबाद - २०१००१

(उत्तर प्रदेश)

द्वितीय बार : मार्च सन् २००३ ई० ✶ मूल्य ५.०० रूपये

'भगवान श्रीकृष्ण

भगवान राम तथा कृष्ण ने भारतीय जन-जीवन को सर्वाधिक प्रेरित, प्रभावित एवं अनुप्राणित किया है । देश के जनमानस में इन्हीं दो दिव्य पुरुषों को सर्वोत्तम लोकप्रियता, मान्यता तथा श्रद्धा प्राप्त हुई है क्योंकि इन दोनों का सम्पूर्ण जीवन वेदानुकूल था ।

इस तथ्य को भुलाकर इस जाति ने उन्हें अवतार की कोटि में लाकर जन सम्पर्क एवं प्रेरणा के [illegible] दिये । उनके दिव्य गुणों को हम अपने जीवन में नहीं ढाल सके । इतना ही क्यों, भगवान कृष्ण के जन्म, शैशव एवं बाल्यकाल को ईश्वरीय चमत्कारों के परिपेक्ष्य में देखकर हम उनके पौरुष, संयम एवं नीतिज्ञता की सदैव उपेक्षा करते रहे जिसका उद्घाटन महाभारतकार को अभिष्ट था ।

अभ्युदय काल

आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व कृष्ण जन्म के समय भारत पतनोन्मुख हो चला था । समस्त सामाजिक मर्यादायें ढह रही थीं । देश खण्ड-खण्ड होकर राज्यों में बिखर रहा था-

'गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः' (महाभारत)

(घर-घर में राजा लोग मौजूद हैं और केवल अपने ही हित में लगे हैं ।)

भारत में गांधार से लेकर सह्याद्रि पर्वत माला तक

विखरे स्वतन्त्र राज्यों को एकता के सूत्र में बाँधने वाला कोई न था । मथुरा का कंस, मगध का जरासंध, चेदि का शिशुपाल और हस्तिनापुर के दुर्योधनादि दुष्ट, दुराचारी एवं विलासी थे। राजाओं के 'दैवी सिद्धान्त' के बन्धनों में महात्वज्ञानी भीष्म तक आबद्ध थे - 'राजा परं दैवतम्' (भीष्मपर्व ५९-१००)

चतुर्दिक् घोर अंधकार, धार्मिक अधःपतन एवं अत्याचार का साम्राज्य था । ऐसी अंधकारमयी यामिनी में भगवान श्रीकृष्ण का जन्म विभक्त भारत को महाभारत में आवद्ध करने के लिये हुआ । उन्होंने अद्‌भुत चातुर्य एवं अप्रतिम कौशल से इन राजाओं का विनाश करवा कर धर्मराज युधिष्ठिर का चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित किया ।

छात्रावस्था एवं लोकनायकत्व

गोकुल के पास ही गुरुकुल में कृष्ण तथा बलराम की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया गया । वहाँ उन्होंने निष्ठापूर्वक शास्त्रों का अध्ययन किया । वेद-वेदांग, धनूर्वेद, स्मृति, मीमांसा तथा न्याय शास्त्र उनके पाठ्यक्रम में थे । इसके अतिरिक्त संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैत तथा आश्रय इन छः भेदों से युक्त राजनीति का भी अध्ययन कृष्ण ने किया । आचार्य संदीपन के यहाँ ६४ दिन रहकर वे धनुर्वेद में निष्णात हुए तथा घोर अंगीरत के चरणों में बैठकर उन्होंने ब्रह्म-विद्या प्राप्त की ।

उनमें जन नेता एंव लोकनायकत्व के गुण प्रारम्भ से ही दृष्टीगोचर होने लगे थे । अरिष्ट नामक पागल बैल, केशी नामक दुर्दम्य घोड़े को मारकर उन्होंने गोकुलवासियों के कष्टों को दूर किया । कृष्ण ने अपने पराक्रम एवं बुद्धिमता द्वारा अनेक आपत्तियों से लोगों की रक्षा कर प्रारम्भ से ही पर दुःख

कातरता का परिचय दिया ।

इस प्रकार अपने सेवाभाव से कृष्ण जनमन-सम्राट बन गये । स्नातक बनकर किशोर कृष्ण ने अंगड़ाई ली और विखण्डित भारत का कारुणिक चित्र वड़ी गम्भीरता से देखा । समस्त राष्ट्र में व्याप्त हाहाकार ने उन्हें आहत कर दिया ।

वे बड़े सुनियोजित ढंग से राजाओं के दैवी सिद्धान्त को शिथिल कर प्रजावत्सल चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना में जुट गये । इस कार्य का शुभारम्भ उन्होंने मथुरा से ही किया ।

संघराज्य के समर्थक

मथुरा यादवों का संघराज्य था । उग्रसेन इनका प्रतिनिधि था किन्तु उसके पुत्र कंस ने जरासंध के समर्थन से अपने पिता को राज्यच्युत कर बलात् मथुरा के सिंहासन पर अधिकार कर लिया । शक्तिमद में उसकी निरंकुशता प्रजा उत्पीड़न के रूप में प्रकट होने लगी ।

श्रीकृष्ण ने पहला लक्ष्य अत्याचारी कंस को वनाया । एक मल्लयुद्ध में उन्होंने महाबली चाणूर तत्पश्चात् कंस का वध कर अपनी शक्ति का परिचय ब्रज भूमि को दिया। यादवों के संघ की पुनः स्थापना कर नाना उग्रसेन को उसका अधिपति बनाया ।

कृष्ण का शौर्य

कृष्ण केवल संघराज्य के समर्थक ही नहीं, अपितु अपने समय के श्रेष्ठतम् वीर पुरुष थे । अरिष्ट, केशी, चाणूर तथा कंस का वर्णन तो किया ही जा चुका है ।

सत्रह बार जरासंध सदृश वीर को पराजित करना,

कुरुक्षेत्र मे भीष्म पितामह पर रथचक्र लेकर प्रहार के लिये उद्यत होना तथा शिशुपाल के सिर को अलग करना इनके शौर्य के विशेष उदाहरण हैं ।

अर्ध्यदान के पात्र-युग पुरुष कृष्ण

कृष्ण की प्रबन्ध पटुता में युधिष्ठिर का राजसूर्य यज्ञ बड़ी सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ । दीक्षा पूर्ण होने पर युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा कि सर्वप्रथम अर्ध्य किसे दिया जाये? भीष्म जी ने कृष्ण की ओर संकेत करके कहा कि **"पृथ्वीतल पर सम्पूर्ण मानव जाति में अर्ध्य प्राप्त करने के सबसे उत्तम अधिकारी कृष्ण ही हैं"**। सहदेव ने उन्हें अर्ध्य प्रदान किया ।

इससे शिशुपाल कृष्ण पर आग-बबूला हो गया और युधिष्ठिर तथा कृष्ण की डटकर भर्त्सना की । भीष्म ने कृष्ण को समर्पित अर्ध्य का औचित्य सिद्ध करते हुए कहा-"मैंने बहुत से ज्ञान वृद्ध महात्माओं का सत्संग किया है । वे श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर अब तक के महत्वपूर्ण कर्मों का वर्णन प्रशंसापूर्वक करते हैं । हम श्रीकृष्ण के यश और शौर्य पर मुग्ध हैं ।

ब्राह्मणों में ज्ञान की पूजा होती है, क्षत्रियों में वीरता की, वैश्यों में धर्म की और शूद्रों में आयु की । यहाँ मैं किसी ऐसे राजा को नहीं देखता, जिसे श्रीकृष्ण ने अतुल तेज से न जीता हो ।

वेद-वेदांग का ज्ञान और दल पृथ्वीतल पर इनके समान किसी और में नहीं है । इनका दान, इनका कौशल, इनकी शिक्षा और ज्ञान, इनकी शक्ति, इनकी शालीनता, इनकी नम्रता, धैर्य और सन्तोष अतुलनीय है ।

वेद वेदांग विज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा ।
नृणां लोके हि कोऽन्योस्ति विशेषः केशवादृते ॥१९॥
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्य्यं ह्रिः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा ।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते ॥२०॥

(सभापर्व अध्याय ४०, श्लोक १९-२०)

भीष्म से कृष्ण की यह प्रशस्ति सुनकर शिशुपाल और अधिक बौखला उठा। उसने भीष्म को भी भला-बुरा कहा तथा कृष्ण के शौर्य का उपहास कर उन्हें युद्ध के लिये ललकारा। कृष्ण जो अब तक मन्द-मन्द मुस्कुराहट से सारे विवाद को सुन रहे थे, बड़े शान्त भाव से उठे।

पहले तो उन्होंने उपस्थित राजाओं के समक्ष शिशुपाल के अनेक कुकृत्यों का भण्डाफोड़ किया। फिर राजसमाज को अवगत कराया कि अपनी फूफी (शिशुपाल की माँ) के आग्रह पर मैंने इसके सौ अपराध क्षमा कर दिये। ऐसा कहकर उन्होंने नरेन्द्र मण्डल के देखते-देखते उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

दौत्य कर्म, शान्ति की उपासना

कंस, जरासंध एवं शिशुपाल आदि का वध करके वे शान्ति स्थापना में सचेष्ट हुए। उनका दौत्य कर्म कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

(१) उनकी हार्दिक इच्छा थी कि पाण्डवों को शान्ति पूर्वक उनका स्वत्व मिल जाये। कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष इतनी योग्यता से यह कार्य सम्पादित नहीं कर सकता था। तदर्थ उन्होंने स्वेच्छा से दौत्यकर्म स्वीकार किया। धृतराष्ट्र के प्रति निवेदित इस सन्देश में शान्ति के लिये उनकी

हार्दिक अभिलाषा स्पृहणीय है-

"महाराज, मैं शान्ति (सन्धि) की भिक्षा माँगने आपके द्वार पर आया हूँ। कौरवों-पाण्डवों में किसी का भी नाश न हो ऐसा उपाय आप कीजिये। शान्ति की स्थापना कोई दुश्कर कर्म नहीं है-यदि आप चाहें। यह आपके और मेरे वश में है। आप अपने पुत्रों को समझायें, मैं पाण्डवों को समझा लूँगा। इससे आपका बल इतना बढ़ेगा कि आप सारे संसार को जीत कर शासन कर सकेंगे। पिछली बातों को जानता हुआ भी युधिष्ठिर 'प्रजा का नाश न हो' इसलिये सब कुछ भुलाने के लिये तैयार है। राजन् आप भी अपने कुल और प्रजा के लिये पुत्रों को समझाकर न्याय-संगत शान्ति का यत्न करें।

कृष्ण की इस अपील का उत्तर तो किसी को क्या देना था ? क्योंकि इसमें धृतराष्ट्र से पितृभाव पूर्वक, वंश-रक्षा तथा लोक-रक्षा के नाम पर अपील की गई थी। इसी प्रकार की मार्मिक अपील दुर्योधन से भी की गई। दुर्योधन से उन्होंने पाँच गाँव❖ तक देने का प्रस्ताव किया।

(२) कृष्ण की इस तर्क संगत अपील पर न केवल धृतराष्ट्र, गान्धारी, भीष्म, विदुर, द्रोण आदि ने दुर्योधन को समझाया, अपितु उसकी सहायतार्थ आये हुए राजागण भी पाण्डवों के पक्ष का औचित्य समझ गये। इस प्रकार कृष्ण ने

❖यह पाँच गाँव कौन-कौन से थे ? इसमें भी जबर्दस्त रहस्य छुपा हुआ है, इस विषय में हमारे द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रन्थ '**मूर्खों के देश में, धूर्तों के राज में**' अवश्य मंगा कर पढ़ें, जिसमें इतिहास की इस तरह की अनेकों अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाया गया है।

-"कर्मयोगी लाजपत राय अग्रवाल"

लोगों की पाण्डवों के प्रति नैतिक सहानुभूति आकर्षित की ।

(३) अपनी अपील का समुचित उत्तर न पाकर कृष्ण ने निर्भिकता पूर्वक भरे दरबार में दुर्योधन का भण्डा फोड़ते हुए उसे चेतावनी दी कि अब तो लड़ाई होकर रहेगी ..... तुझे होश तब आयेगा जब शत्रु की शूरता तुझे रणभूमि में सुला देगी । शान्ति अच्छी थी, तू उसे ठुकरा रहा है ।

(४) कृष्ण की इस भर्त्सना से दुर्योधन सभा से उठ गया और शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि के साथ उन्हें बन्दी बनाने की योजना बनाने लगा । इसका पता चलते ही कृष्ण ने गरज कर धृतराष्ट्र से कहा-"**मैं दुर्योधन को अभी बन्दी बना सकता हूँ । मुझे अकेला मत समझना । दूत के लिये अधर्म होने के कारण मैं दुर्योधन को नहीं बाँधना चाहता**" ।

नैतिकता

कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन नैतिकता के मापदण्डों के पुनर्निर्माण में बीता था । अतः जब उनके बन्धु-बान्धव एवं सजातीय यादवगण उच्छृंखल हो उठे तो विश्व-कल्याण के निमित्त जीने वाले कृष्ण ने अपनी आँखों के सामने ही यादव कुल का विनाश होने दिया ।

संयम एवं ब्रह्मचर्य की साधना

कृष्ण के जीवन में नारी के रूप में केवल उनकी परिणीता महारानी रुक्मिणी का ही सान्निध्य हुआ है । महारानी रुक्मिणी से भी कृष्ण के उद्दाम विलास के कोई संकेत महाभारत में नहीं मिलते, प्रत्युत इस दम्पति का जीवन अत्यन्त सात्विक एवं संयम से परिपूर्ण मिलता है ।

ऐसा संकेत मिलता है कि एक दिन रूक्मिणी ने जब सन्तान की इच्छा प्रकट की तो दम्पति ने बारह वर्ष तक हिमालय की कन्दराओं में ब्रह्मचर्य साधना का तप किया। इस साधना से प्राप्त प्रद्युम्न स्वयं कृष्ण का ही प्रतिरूप था। कृष्ण को अपने पुत्र प्रद्युम्न पर बड़ा गर्व था। स्वयं योगेश्वर कृष्ण के शब्दों में देखिये वे क्या कहते हैं ? -

ब्रह्मचर्य महद्घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ॥

(सौप्तिकपर्व, अध्याय १२, श्लोक ३०)

ऐसे महात्मा के लिये इन पुराणकारों ने ८-८ पटरानियाँ तथा सोलह हजार रानियाँ होने के अनर्गल प्रलाप किये हैं। इन पुराणों ने कृष्ण को कामी-लम्पटी तथा धूर्त के रूप में चित्रित करने का घोर पाप किया है।

सूतपत्नी राधा को छोड़कर किसी अन्य राधा का वर्णन न तो महाभारत में है न श्रीमद्भागवत में। किन्तु (ब्रह्मवैवर्तादि) पुराणकारों ने राधा नामक प्रेयसी की कल्पना करके ब्रह्मचारी कृष्ण के जीवन को कलुषित एवं कलंकित करने की कुत्सित चेष्टा की है।

पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने **'मध्य कालीन धर्म-साधना'** में बड़ी उदारता पूर्वक स्वीकार किया है कि **'प्रेम विलास'** और **'भक्ति रत्नाकर'** के अनुसार नित्यानन्द प्रभु की छोटी पत्नी जाह्नवी देवी जब वृन्दावन गईं, तो उन्हें यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ राधा नाम की मूर्ति की कहीं पूजा नहीं होती।

घर लौटकर उन्होंने नयन भास्कर नामक कलाकार से

राधा की मूर्तियाँ बनवाईं और उन्हें वृन्दावन भिजवाया। जीव गोस्वामी की आज्ञा से ये मूर्तियाँ श्रीकृष्ण के पार्श्व में रखी गईं और तब से श्रीकृष्ण के साथ राधिका की भी पूजा होने लगी।

ज्ञान एवं कर्म के क्षेत्र में कृष्ण

कृष्ण के संयम, स्वाध्याय तथा साधना का फल था कि ज्ञान के क्षेत्र में वे अप्रतिम थे। संसार का महानतम ग्रन्थ गीता उनके ज्ञान का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त कृष्ण विविध विद्याओं में भी निष्णात थे। एक ओर वे शास्त्रों में पारंगत थे तो शस्त्रों में निपुण; राजनीति में वे बृहस्पति थे तो वाद्ययंत्रों में प्रवीण, यदि योग के क्षेत्र में वे समाधिस्थ देखे जाते थे तो युद्धक्षेत्र में काल की तरह विकराल। यदि राजसूय में अर्घ्य अधिकरी बन युग पुरुष के रूप में उभरते हैं तो युद्ध क्षेत्र में कुशल रथी के रूप में चर्चित हैं।

जहाँ तक कर्म का प्रश्न है-उनका जीवन बाल्यकाल में ही कर्मशील रहा है। समस्त महाभारत में वे तटस्थ सूत्रधार न होकर एक पात्र के रूप में क्रियाशील हैं।

योग विभूतियाँ

भगवान कृष्ण महान योगी थे। महाभारत युद्ध के समय उन्होंने तीन बार दृष्टि-अनुबन्ध का प्रयोग किया।

(१) कृष्ण जब दुर्योधन के दरबार में दूत बनकर गये और उनकी भर्त्सना पर दुर्योधन ने उन्हें कैद करने का षडयंत्र किया तो उस महान् योगी ने दृष्टि अनुबन्ध का प्रयोग किया। दुर्योधन आदि को लगा कि सात्विक तथा कृतवर्मा के नेतृत्व में यादवों की सेनायें युद्ध के लिये सन्नद्ध खड़ी हैं। इस अप्रत्याशित

विपत्ति को देखकर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को फटकार कर स्थिति को सँभाला।

(२) कृष्ण ने दूसरी बार अर्जुन की दृष्टि का अनुबंध उस समय किया जब युद्ध क्षेत्र में उसने अस्त्र-शस्त्र रखकर लड़ने से इन्कार कर दिया। कृष्ण ने योग की इसी विभूति का प्रयोग कर अर्जुन को विराट स्वरूप दिखलाया।

(३) जयद्रथ वध के समय भी कृष्ण ने दृष्टि-अनुबंध द्वारा सूर्य अस्त होने का बोध कराया जिससे कौरव पक्ष शिथिल हो गया।

कूटनीतिज्ञता

कौटिल्य ने कूटनीति में शुक्राचार्य की श्रेष्ठता की है किन्तु शुक्राचार्य अपने 'नीतिसार' में लिखते हैं कि "**कृष्ण के समान कोई कूटनीतिज्ञ इस पृथ्वी पर नहीं हुआ**" देखिये-

"न कूटनीतिरभवत् श्रीकृष्ण सदृशोनृपः"

(शुक्रनीति ४-१२-९७)

(१) जरासंध वध के समय देवर्षि नारद द्वारा महाराज युधिष्ठिर को राजसूय रचने के परामर्श पर उन्होंने कृष्ण की राय जाननी चाही। कृष्ण ने दो टूक उत्तर दिया कि "**महान पराक्रमी जरासंध को पराजित किये बिना राजसूय यज्ञ अधूरा रहेगा**"। युधिष्ठिर जरासंध के नाम से अत्यन्त आतंकित हुए और उन्होंने राजसूय यज्ञ का विचार ही त्याग दिया। कृष्ण ने रक्तपात बिना जरासंध के वध का आश्वासन दिया तथा अर्जुन-भीम के साथ स्नातक वेश धारण कर वे जरासंध के महल में गिरिश्रृंग तोड़कर पहुँचे। जरासंध ने इनका उचित स्वागत किया। कृष्ण ने बताया कि ये दोनों मौनव्रत धारण

किये हुए हैं तथा अर्द्धरात्रि को ही ये दोनों इस मौनव्रत को तोड़ेगें। जरासंध ने इन्हें यज्ञशाला में ठहराया और अर्द्धरात्रि में इनके पास पहुँचा। इसी बीच जरासंध को गिरिश्रृंग तोड़ने का समाचार मिल चुका था। इनकी भुजाओं पर धनुष चढ़ाने की डोरी का निशान देखकर उसे यह समझते देर न लगी कि ये लोग क्षत्रिय हैं।

उसने इनसे वेष परिवर्तन, मौन धारण करने, द्वार से न आकर गिरिश्रृंग तोड़कर आने का कारण पूछा। कृष्ण ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों ही स्नातक हो सकते हैं अतः हमें क्षत्रिय स्नातक जानो। मौन इसलिये है कि क्षत्रिय कर्मवीर होते हैं, वाक्सूर नहीं-

"क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्य वीर्यवान्"

(सभापर्व २१-५१)

द्वार से न जाने का प्रयोजन यह कि शत्रु के घर में द्वार से प्रवेश नहीं किया जाता, आगे देखिये-

"अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदोगृहान्"॥

(सभापर्व २१-५३)

इसी से हमारे आने का प्रयोजन समझ लीजिये। जरासंध द्वारा यह पूछने पर कि मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया फिर मुझसे शत्रुता क्यों ?

कृष्ण ने कहा तूने ८६ राजाओं को बन्दीग्रह में डाल रखा है और उनकी बलि चढ़ाना चाहता है। यह नृशंसता का कार्य है। मैं कृष्ण हूँ, ये अर्जुन तथा भीम हैं। या तो तू इन राजाओं को मुक्त करके हमारी मित्रता प्राप्त कर अन्यथा द्वन्द्व-युद्ध स्वीकार कर। जरासंध वीर था। उसने भीम के साथ द्वन्द्व

युद्ध स्वीकार किया । चौदह दिनों तक दोनों में युद्ध हुआ, और जिसके परिणाम स्वरूप जरासंध मारा गया ।

कृष्ण ने ८६ राजाओं को क़ैद से निकाला तथा जरासंध के पुत्र सहदेव को राजसिंहासन प्रदान किया । मुक्त हुए राजाओं ने युधिष्ठिर की मित्रता स्वीकार की ।

(२) जब कृष्ण दुर्योधन की सभा में शान्ति सन्देश लेकर गये थे तब दुर्योधन ने उनसे भोजन करने का आग्रह किया । कुटिल दुर्योधन के यहाँ भोजन करना कृष्ण ने निरापद न समझा और नीतियुक्त उत्तर दिया-राजन् किसी के घर अन्न दो ही कारणों से खाया जाता है या तो प्रेम के कारण या आपत्ति पड़ने पर । प्रीति तो तुममें नहीं है और आपत्ति में हम नहीं हैं ।

(३) दूतकर्म में शान्ति स्थापनार्थ कृष्ण को प्रत्यक्षत: सफलता नहीं मिली । अप्रत्यक्षत: उन्होंने भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्रादि की हार्दिक सहानुभूति पाण्डव पक्ष के लिये अर्जित की ।

दुर्योधन को भारी सभा में डांटकर उसका मनोबल तोड़ा तथा कौरव पक्ष के लिये समुद्यत राजाओं के सम्मुख पाण्डवों का औचित्य प्रस्तुत करने में वे पूर्णत: सफल हुए । विदा होते समय कृष्ण ने कर्ण को रथ में बिठाया और अन्तिम प्रयास के रूप में उसे पाण्डवों के पक्ष में मिलाने का प्रयास किया ।

विजय के बाद सम्राट तक बनाने का लालच उसको दिया तथा पाण्डवों के प्रति भ्रातृभाव भी कुरेदा । कर्ण ने कौरवों का साथ देना न छोड़ा किन्तु नैतिक रूप से यह स्वीकार अवश्य किया कि इस युद्ध में पाण्डवों की ही विजय होगी ।

कर्ण को अपने रथ में बैठाकर वार्ता करने में कृष्ण की

एक और गूढ़ कूटनीतिज्ञता यह थी कि कौरवों में कर्ण के प्रति परोक्षत: शत्रु से मिलने का सन्देह उत्पन्न कर दिया जाये ।

(४) कर्णवध के समय युद्धक्षेत्र में अर्जुन एवं कर्ण का साम्मुख्य होने पर अत्यन्त रोमांचकारी युद्ध हुआ । दोनों एक-दूसरे के प्राणों के भूखे, दोनों शस्त्र पारंगत अपने-अपने कौशल दिखला रहे थे । अवसर पाकर कर्ण ने एक सर्पाकार बाण का प्रहार अर्जुन पर किया । सर्वत्र हाहाकार मच गया ।
कृष्ण ने अत्यन्त स्फूर्ति से घोड़ों को झटका देकर घुटनों पर बैठा दिया । रथ कुछ नीचा हुआ और कर्ण का बाण अर्जुन के किरीट को बेधता हुआ निकल गया । दूसरे ही क्षणं अर्जुन के प्रहार से कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धंस गया । कर्ण जैसे ही पहिये को निकालने के लिये उतरा, कृष्ण का संकेत पाकर अर्जुन ने प्रत्यंचा पर अपना बाण चढ़ाया ही था कि कर्ण ने कहा-"अर्जुन निहत्थे पर प्रहार करना धर्म के विरूद्ध है"। अर्जुन रूक गया किन्तु कृष्ण ने अर्जुन को उद्‌बोधित करते हुए कर्ण से कहा-"अरे कर्ण ! आज जब तेरे प्राण संकट में हैं, तुझे धर्म की याद आ ही गई ! सारे जीवन भर तू धर्म का तिरस्कार ही करता रहा" । कृष्ण ने कर्ण को याद दिलाया कि-

(क) जब भीम को विषयुक्त भोजन दिया गया था तब तुम्हें धर्म का उद्‌बोध क्यों नहीं हुआ था ?

(ख) जब लाक्षागृह में पाण्डवों को भस्म करने का षड्‌यंत्र रचा गया था उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था ?

(ग) जब एक वस्त्रा द्रौपदी को घसीटकर तुम भरी सभा में लाये थे उस समय तुम्हें धर्म स्मरण क्यों नहीं

हुआ ?

(घ) तेरह वर्ष बीतने पर भी पाण्डवों को राज्य न देना किस धर्म संहिता के अनुसार उचित है ?

(ड़) जब सात-सात महारथियों ने मिलकर निहत्थे अभिमन्यु की हत्या की थी उस समय तुम्हारी धर्मबुद्धि कहाँ थी ? देखिये -

यदाभिमन्युं बहबोबुद्धे जहनुर्महारथा: ।
परिवार्यरथे बालं क्वते धर्मस्तदागता:॥

(कर्णपर्व ९०-१०)

कृष्ण ने कहा - "हे ! **कर्ण, जो जीवन भर धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसी की रक्षा करता है किन्तु जो जीवन भर धर्म को मारता है-मारा गया धर्म हन्ता को भी मार देता है, ऐसा शास्त्र का वचन है"** देखिये -

"धर्मे एव हतो हन्ति धर्मों रक्षति रक्षित:"

(मनुस्मृति)

यह कहकर कृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया कि - 'हे अर्जुन ! धर्म तुझे कर्ण वध के लिये ललकार रहा है' ।

मनोविज्ञानवेत्ता कृष्ण

कर्ण-वध के पश्चात् महाभारत का युद्ध उतार की ओर था । कौरव सेना का सेनापतित्व का भार महाराज शल्य के कन्धों पर आ पड़ा । आज पाण्डवों की ओर से युधिष्ठिर ने युद्ध क्षेत्र में जाने का परामर्श कृष्ण से चाहा । महाराज युधिष्ठिर को भारत के चक्रवर्ती सम्राट का पद सुशोभित करना था ।

एक बार कर्ण से पराजित होकर वे आत्म विश्वास खो बैठे थे। कर्ण वध से पूर्व अर्जुन ने कुछ हीन मनोभाव युधिष्ठिर के प्रति प्रकट किये थे। सम्भव है वैसे ही भाव उनके प्रति अन्य भाइयों के भी हों।

भारत के भावी सम्राट के पौरुष के प्रति किसी के मन में सन्देह रहना न केवल सम्राट वरन् देश की परम्परा के लिये भी अशोभनीय था। अतः कृष्ण ने युधिष्ठिर का प्रस्ताव कि-**"आज पराक्रमी शल्य के सम्मुख वह प्रमुख युद्ध करेगा"**, स्वीकार कर लिया। युद्ध निर्णायक दौर में था। युधिष्ठिर ने इस युद्ध में सम्पूर्ण बल एवं कौशल का परिचय देकर शल्य को पराजित किया और अपनी ग्लानि को दूर कर सम्राट पद की योग्यता का परिचय भी दिया।

आर्य समाज पर लाँछन

हमारे पौराणिक भाई आर्य समाज पर एक लांछन लगाते हैं कि हम राम तथा कृष्ण को नहीं मानते हैं। न मानने से इनका तात्पर्य है कि हम इन्हें परमब्रह्म परमात्मा या उसके अवतार की कोटि में स्वीकार नहीं करते।

अवतार का सिद्धान्त सही है भी या नहीं ? यह तो स्वयं में एक स्वतन्त्र प्रश्न है जिस पर अलग से विवेचन की आवश्यकता है किन्तु कृष्ण को लेकर संक्षेप में विचार कर लेना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

अन्य प्रमाणों को छोड़ भी दिया जाये और स्वयं कृष्ण से इसका निर्णय लिया जाये तो वे स्पष्टतः अपने को मनुष्य कहते हुए ईश्वरीय व्यवस्था में स्वयं को विवश पाते हैं।

अहं हि तत्करिष्यामि परं पुरुषकारतः ।
देवं तु न मया शक्यं कर्म्म कर्त्तु कर्थचन ॥

(उद्योग पर्व ७९-५-६)

मैं यथा साध्य मनुष्योचित प्रयत्न कर सकता हूँ परन्तु देव के कामों में मेरा कोई वश नहीं ।

गीता के जिन वचनों से कृष्ण के ब्रह्म होने की पुष्टि लोग करते हैं उचित नहीं । कृष्ण विश्व के महानतम योगी थे । वे परमपिता परमात्मा का साक्षात्कार समाधि की अवस्था में अनेक बार कर चुके थे ।

योगी एवं ब्रह्मवित् होने के कारण वे परमात्मा के प्रतिनिधि के रूप में बोलते हुए गीता में पाये जाते हैं । यदि हम गीता के ऐसे वचनों को जहाँ **'अहम्वाद'** प्रबल हो उठा है, उद्धरण चिन्ह (Inverted Commas) के अन्तर्गत मान लें तो सारी गुत्थी स्वयमेव सुलझ जाती है । कृष्ण ने योगाविष्ट अवस्था में ही गीता का उपदेश दिया था, इसकी पुष्टि महाभारत में भी होती है, देखिये -

कहा जाता है कि महाभारत युद्ध से निवृत होकर एक बार अर्जुन ने कृष्ण से पुनः गीता का उपदेश देने की प्रार्थना की तो कृष्ण ने यह कह कर ही असमर्थता प्रकट की कि उस समय तो मैं योगाविष्ट था ।

इस विवेचन से सुधी पाठक सहमत होंगे कि महामना कृष्ण ईश्वरावतार न होकर महान योगी, अत्यन्त मेधावी राजनीतिज्ञ, महान कूटनीतिज्ञ, शूर-वीर एवं आप्त पुरुष थे ।

आर्य समाज तो कृष्ण को उस धरातल पर देखता है जहाँ मानवता वैतव्य से संयुक्त होती है । जो लोग **'आप्त'**

शब्द के अर्थों का गाम्भीर्य तथा मानवीय शक्तियों की क्षमता आँकने में अक्षम होते हैं, वे ही अवतारवाद की कल्पना के भव्य भवन खड़े करते रहते हैं।

इस अवतारवाद से देश की जो अकल्पनीय हानि हुई है उसे किसी आर्यसमाजी के शब्दों में नहीं अपितु राष्ट्रीय सेवक संघ के आद्य सरसंघ संचालक डा0 हैडगेवार जी की भावना द्वारा झांके -

"श्रीकृष्ण जी ने अपने जीवन में जो अद्‌भुत कार्य किये हैं, वे हमारे हाथों होने असम्भव हैं, वे देवता थे, पूर्णावतार थे, देवताओं का अनुकरण मनुष्य से होना सम्भव नहीं आदि कुछ ऐसी विकृत धारणायें हमारे समाज में रूढ़ हैं। श्रीकृष्ण के समान पूर्ण पुरुष को ईश्वर अथवा अवतार की श्रेणी में ढकेल कर हम ऐसी धारणा बना लेते हैं कि उनके गुणों का अनुशीलन हमारी शक्ति से परे है।"

कृष्ण 'भगवान' क्यों ?

जिज्ञासा हो सकती है कि कृष्ण जब ईश्वरावतार नहीं थे तो इसी पुस्तिका में उन्हें बार-बार भगवान क्यों कहा गया है ? पुस्तक के नामकरण में 'भगवान' शब्द के प्रयोग की सदाशयता क्या है ?

इस समाधान के लिये विज्ञ पाठकों को संस्कृत साहित्य के अनुशीलन की आवश्यकता होगी। 'भग' संस्कृत भाषा का शब्द है जिसके निम्नलिखित अर्थ हैं -

भग-Prosperity-उन्नति, ऐश्वर्य, Dignity-महानता, Glory-यश, Beauty-श्री, Virtue-सद्‌गुण, Morality-नीति

धर्म, Exertion-पुरुषार्थ, Indifference to worldy pleasure-वैराग्य आदि। एक जगह 'भग' की व्याख्या करते हुए लिखा गया है -

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चश्चैव पण्णां भग इतिरणा ॥

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य-इन छः का नाम 'भग' है । जिनके पास इनमें एक भी गुण होता है-वह भगवाला अर्थात् 'भगवान' कहलाता है । लोक में श्रीकृष्ण तथा अन्य कतिपय महापुरुषों में यही सभी 'भग' विद्यमान थे-अतः इन्हें भगवान सम्बोधित करने में आश्चर्य ही क्या ? परमात्मा भी इन भगों से परिपूर्ण होने से भगवान है, मनुष्य भी ।

आर्य समाज का कृष्ण से सम्बन्ध

आर्य समाज के मन्तव्यों एवं कार्यक्रमों में उन सिद्धान्तों पर ही व्यवहार किया जा रहा है जिनकी रक्षा के लिये कृष्ण का जीवन समर्पित था । हमारे पौराणिक भाई कृष्ण के आदर्शों से इन्कार भी नहीं करते किन्तु व्यवहार में भी नहीं लाते ।

(१) उपासना पद्धति में साम्य

उपासना के रूप में आर्य समाज पंचमहायज्ञ जिनके ब्रह्मयज्ञ (संध्या) तथा देवयज्ञ (हवन) भी है एवं योग पर विशेष बल देता है । योगिराज कृष्ण की भी उपासना पद्धति यही थी । वे प्रतिदिन प्रायः सायं सन्ध्या-हवन तथा गायत्री का जाप अवश्य करते थे । हस्तिनापुर जाते हुए मार्ग में रथ रुकवाकर वे सन्ध्या करते हैं, देखिये -

अवतीर्यरथत् तूर्णकृत्वाशौचं यथा विधि ।
रथ मोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ॥

(उद्योगपर्व ३-२१)

प्रातःकाल दुर्योधन की सभा में जाने से पूर्व वे सन्ध्या-हवन से निवृत्त होते हैं-

"कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः" ।

(उद्योगपर्व ३-६)

शौचादि से निवृत्त होकर, स्नान करके प्रातःकाल सन्ध्या तथा अग्निहोत्र किया ।

श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र (यज्ञ) का जो महत्व भगवान कृष्ण ने प्रतिपादित किया है, वह हमारे पौराणिक भाइयों के लिये आदर्श मात्र बनकर रह गया है ।

(२) पांखड का विरोध

आर्य समाज धर्म के नाम पर फैले हुए पाखण्ड का जब विरोध करता है तब हमारे पाखण्ड-खण्डन को लोग दूसरों का दिल दुखाने की संज्ञा देते हैं । भगवान कृष्ण का सारा जीवन पाखंड-खण्डन में ही वीता ।

धर्म के नाम पर ढोंग फैलाने वालों को कृष्ण मिथ्याचारी तथा विमूढ़ कह कर भर्त्सना करते हैं, देखिये गीता में ही कहा गया है कि -

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसास्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

(गीता ३-६)

जो मूढ़ बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को (हठ से) रोक कर

इन्द्रियों के भोगों का मन से चिन्तन करता है वह मिथ्याचारी तथा दम्भी कहा जाता है ।

(३) वर्णव्यवस्था का स्वरूप

आर्य समाज गुण कर्म के अनुसार वर्ण-व्यवस्था की स्थापना का स्वप्न देखता है । इस सम्बन्ध में श्रीकृष्ण जी महाराज के विचार माननीय हैं -

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागश:'

(गीता ४-१३)

गुण तथा कर्मों के अनुसार मैं चारों वर्णों का व्यवस्थापक हूँ । इस प्रकार आर्य समाज ही कृष्ण के आदर्शों का वास्तविक अनुयायी है ।

(४) वेद

आर्य समाज ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त प्रचलित वैदिक कर्म की पुन: स्थापना में संलग्न है । वह वेदों को अपौरुषेय मानता है । हमारे पौराणिक अग्रज अपना सिर तो वेदों के आगे भी झुका देते हैं किन्तु धर्माचरण में पुराणों की व्यवस्था का पालन करते हैं ।

इस सम्बन्ध में भगवान कृष्ण के विचार आर्य समाज से ही साम्य रखते हैं ।

'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्'

(गीता ३-१५)

कर्म को तू वेद से उत्पन्न हुआ जान और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है । स्पष्ट है कि आर्य समाजी, पौराणिकों की अपेक्षा कृष्ण के अधिक निकट हैं ।

कृष्ण चरित्र के उद्धारक महर्षि दयानन्द के शब्दों में

"श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वाभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं।

दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, पर-स्त्रियों से रास मंडल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती" ?

-सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास

अन्त में मैं यही कहूँ कि - परमात्मा हमें कृष्ण के आदर्शों का अनुकरण करने का बल दे।

****

आगामी आने वाली लघु पुस्तिकाओं की सूची

क्र0	पुस्तक का नाम	लेखक
१	मूर्ख बनाओ, मौज उड़ाओ (तीसरा भाग-धार्मिक अन्धविश्वास)	रिसर्चस्कालर - राकेश कुमार आर्य एडवोकेट
२	वेदोपदेश	पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय एम0ए0
३	धार्मिक भूल भुलैया	,,
४	भेड़िया धसान (भेड़ चाल)	,,
५	नशे से हानियाँ	,,
६	हिन्दू संगठन का मूल मंत्र	,,
७	सच्ची बात	,,
८	सभी भगवानों का अवतरण-भारत में ही क्यों ?	-कर्मयोगी लाजपत राय अग्रवाल
९	भक्तों की दुर्गति	,,
१०	भगवान के एजेन्ट	,,
११	क्या भारत का एक विभाजन और होगा ?	,,
१२	धर्म जाये भाड़ में	,,
१३	धर्म और रोटी ?	,,

नोट : विशेष जानकारी के लिये सम्पर्क करें -

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८-विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद ।
पिन-२०१००१ (उ0प्र0)
दूरभाष-०१२०-२७०१०९५

हमारे द्वारा प्रकाशित ट्रैक्ट साहित्य की संक्षिप्त सूची

क्र0	नाम	लेखक	मूल्य
1	ब्रह्मकुमारी मत खण्डन	डा0 श्रीराम आर्य	6.00
2	संसार के पौराणिकों से 31 प्रश्न	"	2.00
3	कुरान में परस्पर विरोधी स्थल	"	1.00
4	ईसाई मत का पोल खाता	"	2.00
5	अवतारवाद पर 21 प्रश्न	"	1.00
6	मृतक श्राद्ध पर 21 प्रश्न	"	1.00
7	मूर्ति पूजा पर 31 प्रश्न	"	1.00
8	तम्बाकू (सिग्रेट–बीड़ी) में विष	"	1.00
9	अण्डा और माँस में विष	"	1.00
10	ईसा मसीह मुक्तिदाता नहीं था	"	1.00
11	खुदा या शैतान	"	3.00
12	यज्ञोपवीत (वैज्ञानिक महत्व)	"	2.00
13	हनुमान जी बन्दर नहीं थे	"	3.00
14	चोटी (वैज्ञानिक महत्व)	"	1.00
15	शिवजी के चार विलक्षण बेटे	"	5.00

नोट : अधिक जानकारी के लिये प्रकाशन विभाग से सम्पर्क करें।

व्यवस्थापक –
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग,
1058 विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद
दूरभाष – (0120) 2701095